गणित शिक्षण - मेरे अनुभव

आमोद कारखानिस

संदर्भ के मई-जून 2019 के अंक में प्रज्ञा कदम का लेख *एक शिक्षक से सहजकर्ता की ओर* पढ़ा। माध्यमिक स्तर पर गणित शिक्षण में बहुत ही कम शिक्षक रचनात्मक विधियों या तरीकों का उपयोग करते हैं। प्रज्ञाजी द्वारा उस दिशा में किए गए प्रयास सराहनीय हैं। लेख में दी हुई जानकारी से यह समझ में आता है कि बच्चे दो वृत्तों के कटान (प्रतिछेद अर्थात् intersection) पर कई तरह की आकृतियाँ बना पाए। साथ ही, उनके परस्पर सम्बन्ध या कुछ खासियतें जैसे समद्विबाहु त्रिभुज भी बच्चे कुछ हद तक देख पाए।

लेख के शुरू में लिखा है कि इस तरह की आकृतियों को लेकर चर्चा करने की प्रेरणा कुछ ज्यामितीय रचनाओं की विधि देखकर हुई है। यह स्पष्ट नहीं कि क्या शिक्षक की मंशा रेखाखण्ड के लम्बसमद्विभाजक (perpendicular bisector) बनाना और रेखाखण्ड पर लम्ब खींचने की विधि उजागर करने की थी।

ज्ञान रचनावादी विधियों का इस्तेमाल करते समय ऐसा होने की काफी सम्भावना होती है कि आपने जो भी तय किया है, बच्चे उस दिशा में न बढ़ें। यूँ तो इसमें कोई खास आपत्तिजनक बात नहीं है। आदर्शरूप में शिक्षक को दिशा-मुक्त होकर पढ़ाना चाहिए। परन्तु आज की शिक्षा पद्धति में शिक्षक को एक पाठ्यक्रम दिया जाता है और शिक्षक को इसे आधार बनाकर बच्चों को पढ़ाना होता है। हालाँकि, आप अपनी सिखाने की पद्धति चाहे जितनी बदल लीजिए, परीक्षा पद्धति तो नहीं बदली है। ऐसी हालत में क्या हम इस तरह की खुली पड़ताल पद्धति के सहारे पढ़ा सकते हैं? इसके लिए शिक्षिका को बड़ी कुशलता से पाठ्यक्रम का जो पाठ पूरा करना चाहती है, बच्चों की सोच और गतिविधियों को उस दिशा में ले जाना चाहिए। यही गाइडेड डिस्कवरी है। इसमें चर्चा के दौरान बीच-बीच में कुछ इशारा देने वाले सवाल पूछना, एक किस्म की विधि है। सवाल ऐसे होने चाहिए जो बिना जवाब बताए बच्चों को सही दिशा में सोचने के लिए अग्रसर करें।

मैंने माध्यमिक स्तर पर इस तरीके से गणित पढ़ाने के प्रयास किए हैं। असरा हाईस्कूल, ठाणे के साथ पिछले सात साल से काम करते हुए और बम्बई महानगर पालिका की लगभग 30 शालाओं के शिक्षक प्रशिक्षण सत्रों के दौरान ये तरीके धीरे-धीरे विकसित हुए हैं।

मैं यहाँ बच्चों के साथ एक पाठ पर हुई चर्चा को एक उदाहरण के तौर पर पेश कर रहा हूँ। मुद्दा वही है जिसकी चर्चा प्रज्ञा ने अपने लेख में की है।

तो चलिए, ज्यामितीय रचना से शुरू करते हैं। किसी रेखा पर दिए गए बिन्दु से उस

रेखा पर लम्ब बनाना। वैसे तो यह विधि निचली कक्षाओं में पढ़ाई और रटाई जाती है, परन्तु कक्षा-7 में त्रिभुज के बारे में पढ़ने के बाद हमने इस रचना को फिर से कक्षा में करना तय किया था।

पहले बच्चों के साथ उनकी भाषा में समस्या सम्बन्धी कथन यानी इबारत बनाना था। वो शायद कुछ इस प्रकार उभरकर आएगा, *एक रेखा लेते हैं। उसे कुछ नाम दे दो - AA'। अब इस रेखा पर कोई भी एक बिन्दु जिसे हम B कह रहे हैं, वो बनाना है। फिर हमें एक ऐसी रेखा ढूँढ़नी है जो AA' पर तो लम्ब हो और B बिन्दु से गुज़र रही हो*। क्या ढूँढ़ना है, यह हर बच्चे को अपने शब्दों में लिखना बहुत ज़रूरी है, नहीं तो वे इबारत की व्याख्या में ही फँसे रहते हैं।

इस समस्या को सुलझाने के पहले हमें यह देखना चाहिए कि लम्ब के बारे में हम कौन-सी बातें जानते हैं और इसके पहले हमने लम्ब कहाँ-कहाँ देखे हैं।

अगर त्रिभुज के गुणधर्म वाला पाठ सीखे थोड़ा समय बीत गया हो तो इस चर्चा में यह ध्यान दिलाना पड़ता है कि लम्ब के बारे में अभी जो पाठ चल रहा है, सिर्फ उसी सन्दर्भ में लम्ब को न देखें। पहले पढ़ाए जा चुके पाठ के साथ भी उसे जोड़कर देखें।

हम लोग जब त्रिभुज, उनके प्रकार व गुणधर्म का पाठ पढ़ रहे थे तब हमें कई बार अलग-अलग त्रिभुज बनाकर काटने की ज़रूरत पड़ी थी। उस समय जब मैंने बच्चों को बताया था कि कोई भी एक समद्विबाहु त्रिभुज बनाकर काटो, तो बच्चों ने कुछ प्रयासों के बाद कागज़ को फोल्ड करके एक टेढ़ी लाइन पर काटने की विधि ढूँढ़ निकाली थी। जब समद्विबाहु त्रिभुज के गुणधर्म की चर्चा हुई तब शिरोबिन्दु से निकाला हुआ लम्ब आधार को दो समान भागों में बाँटता है - यह उन्होंने कागज़ फोल्ड करके देखा था। उनकी समद्विबाहु त्रिभुज काटने की विधि इसी गुणधर्म पर आधारित है, इसकी चर्चा हमने कक्षा में की थी।

उस समय इस गुणधर्म पर विस्तृत बातचीत कुछ इस प्रकार की गई थी।

क्या यह सोचा जा सकता है कि अगर समद्विबाहु त्रिभुज के शिरोबिन्दु से निकाला हुआ लम्ब, आधार को दो बराबर हिस्सों में बाँटने वाला होता है तो शिरोबिन्दु से आधार के मध्य बिन्दु को जोड़ने वाली रेखा आधार पर लम्ब होती है?

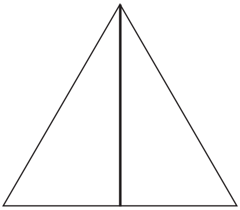

अच्छा रहेगा अगर इस प्रकार की चर्चा त्रिभुज सिखाते समय ही की जाए। गतिविधि आधारित या रचनात्मक पद्धति सन्दर्भों से कटकर गणित के किसी एक पाठ के लिए इस्तेमाल नहीं की जा सकती। बच्चों को शुरू से ही गतिविधियों के दौरान करके देखने की, नतीजों पर गौर करने की, और परिणाम से अपने निष्कर्ष निकालने की आदत होनी चाहिए।

गणित में कई अवधारणाएँ एक-दूसरे से सम्बन्धित होती हैं इसलिए जहाँ भी इस तरह के जुड़ाव दिखाई देते हैं, उनको जोड़कर ही सिखाना चाहिए। रचनात्मक विधि से

गणित पढ़ाते समय इन बातों को अपनी आदत में शामिल किया जा सकता है।

चूँकि ठाणे के हाईस्कूल के साथ मैं पिछले कई बरसों से काम कर रहा हूँ, इस दौरान जिन बच्चों के साथ मैंने काम शुरू किया था, वे अब पहली-दूसरी कक्षा से होते हुए सातवीं-आठवीं तक पहुँच गए हैं। इसलिए उन बच्चों के साथ इस तरह की पद्धति अपनाने में दिक्कत नहीं आती।

बच्चों को याद दिलाएँ कि कागज़ को काटकर बनाए हुए समद्विबाहु त्रिभुज को अगर बीचों-बीच से मोड़ते हैं तो वह मोड़ आधार का लम्बसमद्विभाजक होता है। इसी बात को उल्टा करके भी बोला जा सकता है, यानी मेरे पास एक रेखाखण्ड का मध्य बिन्दु है। यह रेखाखण्ड अगर किसी समद्विबाहु त्रिभुज का आधार है तो उसके शीर्ष और रेखाखण्ड के मध्य को जोड़ने वाली रेखा, रेखाखण्ड का लम्ब होगी। आपको बच्चों का ध्यान इस ओर दिलाना होगा।

एक बार हम इस कथन तक पहुँच गए तो इस मुद्दे को आगे बढ़ाना है, अब हमारे पास लम्ब बनाने का एक तरीका है। लेकिन अपनी मूल समस्या की इबारत में न तो रेखाखण्ड है, न समद्विबाहु त्रिभुज। हमारे पास सिर्फ एक लाइन है और उस पर बनाया गया एक बिन्दु। क्या हम इस बिन्दु को किसी रेखाखण्ड के मध्यबिन्दु में बदल सकते हैं? क्या हम इस बिन्दु को लेकर बच्चों को सोचने का मौका दे सकते हैं?

इस पद्धति में एक बात का डर बना रहता है। ऐसा प्रतीत होता है कि मास्टरजी के पास कोई सही तरीका है और हमें उसका अन्दाज़ लगाना है। इस स्थिति में बच्चे स्वतंत्र होकर या खुलकर सोचना बन्द कर देते हैं और अटकलबाज़ी लगाना ही एक तरीका बचता है। इन हालात से निकलने का मेरे पास कोई ठोस रास्ता नहीं है पर मेरी क्लास में ऐसा नहीं होता क्योंकि बच्चे मुझे भली-भाँति जानते हैं और हम इस पद्धति से कई सालों से काम करते आ रहे हैं। उन्हें मालूम है कि मैं उन्हें भटका भी सकता हूँ।

आप बच्चों को इस तरह का संकेत दे सकते हैं कि - अगर बिन्दु B किसी रेखाखण्ड का मध्य बिन्दु है तो रेखाखण्ड के दो छोर या सिरे कहाँ होंगे, और कितनी दूरी पर होंगे?

अगर रेखाखण्ड के छोर को हम C और D कहें, तो ज़ाहिर है कि वो दोनों बिन्दु AA' पर ही होंगे, उन्हें कैसे बनाया जाए?

हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचना है कि बिन्दु C और D, बिन्दु B से समान दूरी पर होंगे और वे B के दोनों ओर के सिरों पर होंगे।

अगला पड़ाव है - C और D बिन्दुओं को खींचने की विधि क्या होगी। हमारे पास स्केल नहीं है तो किस तरह से ये बिन्दु ढूँढ़े जा सकते हैं?

हमारा रेखाखण्ड बिन्दु CD तक बन गया जिसमें B मध्यबिन्दु है। अब अगली चुनौती है, बिन्दु CD आधार है, इस पर समद्विबाहु त्रिभुज बनाना। इस आकृति के पूरा होने के बाद चाहे तो यह चर्चा कर सकते हो कि खींची गई रेखा लम्ब है, यह कैसे साबित

करोगे। इसके लिए त्रिभुज की सर्वांग समता (congruency conditions) की शर्तें मालूम होना चाहिए।

कक्षा में इसी तरह से अन्य ज्यामितीय रचनाएँ भी करवाई जा सकती हैं। बस, इस बात का ध्यान रखिए कि मार्गदर्शन या ध्यानाकर्षण वाले कथनों को सावधानीपूर्वक चुनना है।

शुद्ध रचनावाद का आग्रह रखने वाले कुछ साथियों को मेरे इस तरीके पर ऐतराज़ होगा। हो सकता है, उनके विचार से इस तरीके में शिक्षक की भूमिका सिर्फ सहजकर्त्ता की नहीं बल्कि दिशाप्रदर्शक/पथप्रदर्शक (navigator) की तरह प्रस्तुत हो रही है। आंशिक रूप से यह सच है, यह कमी हो सकती है। परन्तु पाठ्यक्रम पूरा करने के बोझ से दबे मेरे शिक्षक मित्रों के लिए इस तरीके को मैं दो चरम छोर के बीच के स्वर्णिम मध्य (गोल्डन मीन) के रूप में देखता हूँ।

पढ़ाने के इस तरीके के कई फायदे हैं। मसलन, हम इस बात की पुष्टि करते हैं कि गणित में सभी सूत्र व विधियाँ तर्क के आधार पर बनती हैं। शालेय स्तर पर गणित सिखाते समय हर बार मेरी यह कोशिश रही है कि बच्चे सभी सूत्र कर पाएँ। कुछ सूत्र, जैसे $(a+b)^2$ कागज़ पर आकृति बनाकर या कागज़ मोड़कर या सरल गतिविधियों द्वारा प्राप्त किए जा सकते हैं। परीक्षा के दौरान सूत्र याद रखने में कुछ कठिनाई महसूस हुई तो सिर्फ याद्दाश्त पर भरोसा रखने की बजाय उन्हें झट-से सूत्र की व्युत्पत्ति कर पाना सम्भव होना चाहिए। इससे विद्यार्थियों में गणित का डर कम होने में बड़ी मदद मिलती है। इस रचना को तार्किक ढंग से हल करने के कारण विद्यार्थी को अगर अगली बार विधि याद करने में कठिनाई हुई तो वह इतना ज़रूर याद रखेगा कि मुझे इस बिन्दु को आधार का मध्यबिन्दु बनाना है और उस पर एक समद्विबाहु त्रिभुज बनाना है।

ज्यामितीय रचना की इस विधि तक पहुँचने में समद्विबाहु त्रिभुज के गुणधर्म का इस्तेमाल करना एक तरीका है। इसके अलावा अन्य विधियों से भी उसे हल किया जा सकता है। उन सब तरीकों का भी यहाँ स्वागत है। शिक्षक की भूमिका भी यही होनी चाहिए। विद्यार्थियों को अन्य तर्क इस्तेमाल करने हेतु प्रोत्साहित करना चाहिए।

हम इस समस्या के समाधान के लिए किसी एक मानक तरीके के अलावा अन्य रास्तों का भी स्वागत कर सकते हैं। फिर भी बच्चे उस मानक तरीके पर पहुँच ही जाते हैं। दुर्भाग्यवश, हमारे कई शालेय परीक्षा बोर्ड में मानक विधि के अलावा अन्य किसी विधि के इस्तेमाल को स्वीकार नहीं किया जाता। इसलिए अभी तो शैक्षणिक ढाँचों की इन सीमाओं एवं पाबन्दियों के साथ ही जीना होगा।

आमोद कारखानिस: पेशे से कम्प्यूटर इंजीनियर। लेखन एवं चित्रकारी का शौक। मुम्बई में रहते हैं।

शिक्षकों की सहभागिता से बढ़ा होविशिका में रोमांच

कालू राम शर्मा

संदर्भ के पिछले दो अंकों में सुभाष गांगुली का लेख *करके देखा, समझ गया* पढ़कर कुछ नोस्टेल्जिक हुआ जा रहा हूँ। सचमुच 34-35 बरस पुरानी यादों को सुभाष भाई ने अपने इन दोनों लेखों में बहुत ही खूबसूरती के साथ संजोया है जिनका मैं साक्षी ही नहीं बल्कि सहयात्री भी रहा हूँ।

मुझे याद है जब मैं 1985 के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षक प्रशिक्षण में उज्जैन के शासकीय शिक्षा महाविद्यालय (पीजीबीटी) में पहली बार शामिल हुआ था। जीव शास्त्र का विद्यार्थी होने के नाते मैं भी अचरज से इस नज़ारे को पहली दफा देख रहा था। मैं अपने गुरू प्रोफेसर भरत पूरे के साथ वहाँ पहुँचा था। यहाँ का नज़ारा देखकर एक रोमांच (वैसा ही जैसा सुभाष ज़िक्र कर रहे हैं) मुझे व औरों को हो रहा था। मैंने महाविद्यालयीन शिक्षा में भ्रूण-विज्ञान (एम्ब्रियोलॉजी) को महज़ पढ़ा ही था मगर नज़दीक से देखने और समझने का मौका हाथ नहीं लगा था। चूँकि उस वक्त मेरे पास स्कूली शिक्षा के प्रशिक्षणों वगैरह का कोई अनुभव नहीं था इसलिए तब मैं किसी भी प्रकार की तुलना करने के योग्य नहीं था। लेकिन आज जब स्कूली शिक्षा में काम करते हुए साढ़े तीन दशक का अनुभव पा चुका हूँ, मैं अपने इस लेख में मुख्य-धारा की स्कूली शिक्षा और खासकर विज्ञान शिक्षा के प्रशिक्षण के पहलुओं को संक्षेप में रखने की कोशिश करूँगा।

बच्चे खुद से करके सीखें

होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम का पूरा ज़ोर इस पर था कि बच्चे अपने परिवेश व सन्दर्भ से विज्ञान सीखें। वे खुद से प्रयोग करें, अवलोकन करें, परिभ्रमण पर जाएँ। प्रयोग जो भी करें, उनके जवाब बच्चे खुद से अवलोकन के ज़रिए ढूँढ़ें। बात आसानी-से समझ में आती है कि विज्ञान में प्रयोग किया ही इसलिए जा रहा है क्योंकि उससे हमें अवलोकन प्राप्त होंगे जिनके कन्धे पर सवार होकर हम निष्कर्ष पर पहुँचेंगे। यह भी उल्लेख करने की ज़रूरत है कि प्रयोगों के अवलोकनों को तोड़ना-मरोड़ना नहीं है, जस-के-तस उन्हें लिखना है। अगर प्रयोग के अवलोकन कक्षा में फर्क आ रहे हैं तो आपको प्रयोग फिर से करके देखना होगा कि आखिर ये फर्क क्यों आ रहे हैं। उन कारणों को खोजना भी विज्ञान शिक्षण का एक अहम हिस्सा है।

इसके पहले कि हम आगे बढ़ें, मैं अपने शब्दों में दोहरा दूँ जो सुभाष अपने पहले लेख में कहते हैं। "प्रशिक्षण इस बात का था कि मिडिल स्कूल के विज्ञान शिक्षक क्या

पढ़ाएँगे और कैसे।" दरअसल, यही इस प्रशिक्षण की प्रमुख खासियत होती थी। शिक्षक प्रशिक्षण में वह होना चाहिए जो शिक्षक को अपनी कक्षाओं में 'करना' होता है।

सुभाष अपने लेख में शिक्षक प्रशिक्षण की एक घटना की रोमांचक तस्वीर खींचने की कोशिश करते हैं। तब *बाल वैज्ञानिक* कक्षा सातवीं में 'विकास' नामक एक पाठ था। इसमें बीजों को बो कर, लगभग 20 दिनों तक एक-एक बीज को उखाड़कर, परिवर्तनों का अध्ययन करना शामिल था। इसी प्रकार से जन्तुओं के विकास को लेकर मुर्गी के अण्डों में चूज़े के विकास की विभिन्न अवस्थाओं का अध्ययन किया जाता था। इस कवायद को समझाते हुए बच्चों को यह एहसास दिया जा सकता है कि जीवों का विकास कैसे होता है और इस दौरान उन तमाम उदाहरणों व अनुभवों को कक्षा शिक्षण का हिस्सा बनाया जा सकता है जो उन्होंने अपने आसपास देखे हैं।

बच्चों को यह अनुभव देने के पहले यह नितान्त ज़रूरी है कि शिक्षकों को इस प्रक्रिया से गुज़ारा जाए ताकि वे अपने स्कूल में विज्ञान शिक्षण के दौरान बच्चों को भी इस प्रक्रिया से गुज़ार सकें। कुल मिलाकर होशंगाबाद विज्ञान शिक्षक प्रशिक्षण का मकसद शिक्षकों को इस नई भूमिका के लिए तैयार करना था जहाँ वे बच्चों को 'करके सीखने' के मौके दे सकें।

तो होशंगाबाद विज्ञान का पूरा ज़ोर इस पर होता था कि शिक्षक अपनी कक्षाओं में विज्ञान के प्रयोगों की व्याख्या न करें बल्कि वे बच्चों की मदद करें। बच्चे स्वयं अपने अवलोकनों की व्याख्या करें और निष्कर्ष तक पहुँचें व सही-गलत का फैसला करना सीखें। अगर बच्चों से यह अपेक्षा की जा रही है तो शिक्षकों को इसके लिए तैयार करना ज़रूरी है। कुल मिलाकर प्रशिक्षण में शिक्षकों को प्रयोग करने में हुनरमन्द बनाना, अवलोकनों के ज़रिए निष्कर्ष तक पहुँचाना और सम्बन्धित विषय की समझ को पैना करना शिक्षक प्रशिक्षण के प्रमुख तत्व थे।

शिक्षकों का उन्मुखीकरण

होशंगाबाद विज्ञान के प्रशिक्षण में शुरुआत से ही यह सोच थी कि शिक्षक प्रशिक्षण में दरअसल, शिक्षकों के साथ खुले संवाद की प्रक्रिया हो जिसमें दो-तरफा संवाद हो सके। ऐसा नहीं कि केवल शिक्षक प्रशिक्षक अपना राग अलापते रहें। "इस लिहाज़ से पूरे उद्यम को प्रशिक्षण न कहकर शिक्षकों के साथ अन्तर्क्रिया या उनका उन्मुखीकरण कहना उपयुक्त होगा। पूरी अन्तर्क्रिया शिक्षकों को कार्यक्रम के हर पहलू में भागीदार बनाने की रही।" (जश्न-ए-तालीमः सुशील जोशी)

प्रत्येक शिक्षक को तीन वर्ष का प्रशिक्षण लेना होता था। पहले साल कक्षा छटी का, दूसरे साल सातवीं व तीसरे साल आठवीं का। प्रशिक्षण शिविर गर्मियों की छुट्टियों में आयोजित किया जाता था। एक प्रशिक्षण शिविर 21 दिनों का होता था जो पूर्णतः आवासीय था।

ज़ाहिर है कि तब स्कूलों में अधिकांश शिक्षक विज्ञान की पृष्ठभूमि के नहीं थे। ज़्यादातर शिक्षक हायर सैकण्ड्री तक ही पढ़े हुए थे। जो शिक्षक स्नातक थे भी, उनमें से इक्का-दुक्का ही विज्ञान के होते थे।

मैं ऐसे शिक्षकों को जानता हूँ जो उज्जैन व इन्दौर सम्भाग में प्रारम्भ हुए होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के 21 दिन के प्रशिक्षण में जाने से कतराते थे। लेकिन एक बार इस प्रशिक्षण में शामिल होने के बाद वे उसी के 'होकर' रह गए। वजह साफ थी कि उन्हें शिक्षा विभाग द्वारा संचालित सेवाकालीन शिक्षक प्रशिक्षणों का अनुभव था जो बेहद नीरस, उबाऊ और अर्थहीन होते थे, जहाँ उनकी अभिव्यक्ति पर लगाम लगा दी जाती थी। ऐसे में यह स्वाभाविक ही था कि तीन सप्ताह में उनका क्या हाल होने वाला है। मगर जब वे होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के प्रशिक्षण में शामिल होते तो कुछ दिन बिताने के बाद उनका उत्साह चरम पर होता। इस प्रशिक्षण का मूल मंत्र यही था कि शिक्षक, प्रशिक्षण में निष्क्रिय न रहें। वे पूरी तरह से कक्षा में भागीदारी करें। वे सवाल करें। वे खुद से प्रयोग करें। अगर हम कहते हैं कि शिक्षक अपनी कक्षा में प्रजातांत्रिक माहौल बनाएँ तो इसके पहले ज़रूरी होगा कि शिक्षक को इस तरह की झलक उनके प्रशिक्षण में मिले। और यही कोशिश होती थी।

प्रशिक्षण की तैयारियाँ

मुझे याद है कि उस प्रशिक्षण के आयोजन की पूर्व-तैयारी के व्यवस्थागत पहलुओं को कितनी गम्भीरता से लिया जाता था जैसे कक्षाओं में बैठक व्यवस्था, पानी की व्यवस्था, शौचालयों की स्वच्छता से लेकर आवासीय स्थल पर शिक्षकों व स्रोत दल के साथियों की रुकने की व्यवस्था - ऐसे सब पहलू जिन्हें आज भी ज़्यादातर सरकारी प्रशिक्षणों में बहुत लापरवाही से लिया जाता है। प्रशिक्षण का आवास स्थल, अक्सर शासकीय होस्टल वगैरह होता था, इसलिए वहाँ हर तरह की व्यवस्थाएँ जुटानी होती थीं। बाथरूम में नल की टोटी ठीक है या नहीं, शौचालय कहीं चोक तो नहीं हैं, पानी, मग्गे-बाल्टी की व्यवस्था, झाड़ू, बल्ब जैसे तमाम मसलों का ख्याल रखा जाता था और उन्हें सुनिश्चित किया जाता था।

लिहाज़ा, शिक्षक प्रशिक्षण में रोज़ाना पाँच घण्टे की कक्षा भाषण से मुक्त होती थी, जहाँ *बाल वैज्ञानिक* के अध्यायों की अवधारणाओं पर विज्ञान के तयशुदा मापदण्डों पर काम होता था। प्रयोगों के लिए प्रयोग-सामग्री की उपलब्धता एक अहम पहलू था। इतना ही नहीं, प्रयोग सामग्री उपयुक्त है या नहीं, उसकी जाँच प्रशिक्षण के पूर्व ही की जाती थी। ऐसा नहीं कि स्रोत दल के सदस्य, जिस दिन प्रशिक्षण प्रारम्भ हो रहा है, उसी दिन आएँगे और कक्षा में चले जाएँगे। स्रोत दल के जिन सदस्यों को कक्षा लेनी होती थी, वे खुद पहले प्रयोग करके देखते थे व किट सामग्री की जाँच करते थे। प्रशिक्षण के ठीक तीन दिन पहले स्रोत दल के सदस्य प्रशिक्षण स्थल पर पहुँच जाते और शैक्षिक से लेकर व्यवस्थागत तैयारी करते।

अवलोकन है महत्वपूर्ण

लौटता हूँ मूल मुद्दे पर। 'विकास' नामक इस अध्याय की सफलता या कहें कि इसे प्रशिक्षण में करने का पूरा दारोमदार इस बात पर टिका होता था कि मुर्गी द्वारा सेये हुए अलग-अलग अवस्था वाले अण्डे उपलब्ध हों। चूँकि प्रशिक्षण का ढाँचा टोलियों में काम करने की अवधारणा पर टिका था, 'प्रदर्शन' को तिलांजली दी जा चुकी थी।

प्रदर्शन में आम तौर पर प्रशिक्षणार्थी केवल नज़रें गड़ाए दर्शक बने रहते हैं। इसकी बजाय होना तो यह चाहिए कि प्रत्येक शिक्षक को नज़दीकी-से अवलोकन करने का मौका मिले, वे खुद से प्रयोग करें। इसलिए मुर्गी के अण्डे की अलग-अलग अवस्थाओं के अण्डे प्रत्येक टोली को उपलब्ध होने चाहिए। अगर मुर्गी द्वारा सेये हुए अण्डे उपलब्ध न हों तो इस अध्याय के शिक्षण का कोई महत्व नहीं रह जाता बल्कि वह मात्र जानकारी दे देने व 'ऐसा करना चाहिए, वैसा करना चाहिए' में सिमटकर रह जाता।

इसलिए प्रशिक्षण के ठीक एक-आध महीने पहले मुर्गी द्वारा सेये हुए अण्डों का जुगाड़ शुरू कर दिया जाता था। मुझे याद है कि हमारे वरिष्ठ स्रोत सदस्य प्रोफेसर भरत पूरे ने इन्दौर के एक पोल्ट्री फार्म से सम्पर्क किया था। पोल्ट्री फार्म में जो मुर्गियाँ रखी जाती हैं, वे संकर जाति की होती हैं जो बिना मुर्गे (नर) के ही अण्डे देती हैं। मार्केट में बिकने वाले अण्डे अनिषेचित होते हैं। ऐसे अण्डों से चूज़े नहीं बनते। जब पोल्ट्री फार्म वालों को मुर्गियाँ पैदा करनी होती हैं तो वे मुर्गियों के बीच मुर्गे को छोड़ देते हैं, ताकि मुर्गी व मुर्गे के मेल से बने अण्डे निषेचित हों। फिर इन अण्डों को इंक्यूबेटर में सेया जाता है। ऐसी व्यवस्था कुछ पोल्ट्री फार्म वालों के पास ही रहती है। हाँ, एक बात और कि पोल्ट्री फार्म वाले आम तौर पर अण्डों से चूज़े बनाने का वक्त गर्मी के मौसम को छोड़कर ही चुनते है, क्योंकि इस मौसम में अण्डों से निकले चूज़े इतनी गर्मी बर्दाश्त नहीं कर पाते हैं।

इसलिए पोल्ट्री फार्म से सम्पर्क कर विशेष अनुरोध किया गया कि क्या वे गर्मी के दिनों में क्रमशः 3, 5, 7 और 10 दिन की अवस्था वाले अण्डे अमुक तिथियों में उपलब्ध करवा सकते हैं। ऐसा इसलिए ताकि प्रशिक्षण के दौरान, एक ही दिन में इन सब अवस्थाओं वाले अण्डों के साथ प्रयोग हो सके। तो प्रशिक्षण के कैलेंडर में 'विकास' वाले अध्याय को उसी तारीख में किया जाना तय हुआ जिस दिन अण्डे पोल्ट्री फार्म से मिलने वाले थे।

सन् 1985 में नर्मदा सम्भाग के शिक्षकों के लिए होशंगाबाद ज़िला मुख्यालय और इन्दौर व उज्जैन सम्भाग के शिक्षकों के लिए उज्जैन में शिक्षक प्रशिक्षण का आयोजन किया जा रहा था। दोनों ही जगहों पर 'विकास' नामक अध्याय के लिए मुर्गी द्वारा सेये विभिन्न अवस्थाओं वाले अण्डों की ज़रूरत थी। मैं उज्जैन के प्रशिक्षण में भाग लेने गया था। इन्दौर के पोल्ट्री फार्म से सेये अण्डों का एक सेट उज्जैन प्रशिक्षण में पहुँचाना था और दूसरा होशंगाबाद में। तब इन्दौर के पोल्ट्री फार्म से सेये हुए अण्डों को लेकर मैं बस के ज़रिए होशंगाबाद पहुँचा। अगली सुबह वहाँ 'विकास' अध्याय के तहत मुर्गी के अण्डों का विच्छेदन किया गया। बाकी का ब्यौरा आपको सुभाष भाई के लेख में मिल ही गया है।

इस दौरान जिस रोमांच का बयाँ किया जा रहा है, वह वाकई में प्रयोगों को अपने हाथों से करने, चर्चा में स्वच्छन्द भाग लेने, शिक्षक-शिक्षक के बीच व शिक्षक-स्रोत दल के बीच अन्तर्क्रिया व अपनी बात को बेखटके कहने का परिणाम ही कहा जा

सकता है। 'विकास' अध्याय की यह घटना एक प्रमाण है कि यह अध्याय काफी तैयारी और प्रबन्धन की माँग करता है। इसी तरह तमाम अध्यायों की तैयारी में स्रोत दल के सदस्य जुनून के साथ लगे रहते थे।

अगर इस मापदण्ड पर मैं आज के विज्ञान शिक्षक प्रशिक्षणों का वर्णन करूँ तो निराशा हाथ लगती है। वास्तव में, हमारे यहाँ मुख्यधारा की स्कूली शिक्षा के प्रशिक्षण आज भी शिक्षक केन्द्रित नहीं बन सके हैं बल्कि मॉड्यूल केन्द्रित बनकर रह गए हैं। मॉड्यूल जो केन्द्रिकृत ढंग से राज्य स्तर पर तैयार किया जाता है, उसके भरोसे ही प्रशिक्षण होता है। आज भी इस पर काम और बातचीत कम ही होती है कि शिक्षक को कक्षा में विज्ञान का शिक्षण कैसे करना है। प्रयोगों के नाम पर कुछेक प्रयोग होते भी हैं तो वे प्रदर्शन किए जाते हैं।

कालू राम शर्मा: अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, खरगोन में कार्यरत। स्कूली शिक्षा पर निरन्तर लेखन। फोटोग्राफी में दिलचस्पी।

और भी कुछ कहना है .....

मेरे द्वारा लिखा गया *संदर्भ* के पिछले दो अंकों में प्रकाशित लेख मूल रूप से बांग्ला में लिखा गया था और दो भागों में *बिग्गान ओ बिग्गानकोर्मी* (जिसका अर्थ है 'विज्ञान और वैज्ञानिक कार्यकर्ता') पत्रिका के अंक जनवरी-फरवरी और मार्च-जून 1986 में प्रकाशित हुआ। 2010 में, मूल लेख का अँग्रेज़ी अनुवाद https://sites.google.com/site/subhascganguly/writings वेबसाइट पर प्रकाशित किया गया था। *संदर्भ* में प्रकाशित लेख अँग्रेज़ी से अनुदित है।

मुझे सुदीप्ता सरस्वती के माध्यम से काफी समय बाद पता चला कि भाग एक की शुरुआत में उद्धृत कहावत जिसमें से लेख का नाम (*करके देखा, समझ गया*) लिया गया है, असल में एक प्राचीन चीनी कहावत का हिन्दी अनुवाद है। एलन गुडविन के लेख में चीनी दार्शनिक कन्फ्यूशियस को इसका श्रेय दिया गया है। यह लेख (वंडर एंड द टीचिंग एंड लर्निंग ऑफ साइंस) पहली बार *एजुकेशन इन साइंस* के सितम्बर 1994 अंक में प्रकाशित हुआ।

सुदीप्ता सरस्वती से मुझे यह भी पता चला कि लेख के पहले भाग में वर्णित मुर्गी के अण्डे वाला प्रयोग अरस्तू ने भी किया था और प्रयोग के बाद की टिप्पणियों का ब्यौरा उनके प्रचलित लेखन का हिस्सा है।

देखिए लिंक: http://classics.mit.edu/Aristotle/history_anim.6.vi.html

---

सुभाष चन्द्र गांगुली: राजनीतिक-सामाजिक कार्यकर्ता व आयोजक। कोलकाता, पश्चिम बंगाल में रहते हैं।